हस्तक्षेप

सांप्रदायिक एवं लक्षित हिंसा विधेयक

लोकतंत्र, संघवाद, पंथनिरपेक्षता पर प्रहार

प्रो. राकेश सिन्हा

भारत नीति प्रतिष्ठान

हस्तक्षेप

सांप्रदायिक एवं लक्षित हिंसा विधेयक

लोकतंत्र, संघवाद, पंथनिरपेक्षता पर प्रहार

प्रो. राकेश सिन्हा

INDIA POLICY FOUNDATION
॥ प्रदीपयेम् जगत् सर्वम् ॥

भारत नीति प्रतिष्ठान

डी-51, हौजखास, नई दिल्ली-110016

इस प्रकाशन के किसी भी अंश का प्रतिलिपिकरण, ऐसे यंत्र में भंडारण जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो या स्थानान्तरण, किसी भी रूप में या किसी भी विधि से, इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या किसी और ढंग से, प्रकाशक की पूर्व अनुमति के द्वारा नहीं किया जा सकता।

प्रकाशकः
भारत नीति प्रतिष्ठान
डी–51, हौजखास
नई दिल्ली – 110016 (भारत)
दूरभाषः 011–26524018
फैक्सः 011–46089365
ई–मेल : indiapolicy@gmail.com
वेबसाइट : www.indiapolicyfoundation.org

संस्करण : प्रथम, 2011

भारत नीति प्रतिष्ठान

मूल्य : 25 रुपये मात्र

मुद्रक : Shri Sai Anand Printer Pvt. Ltd., 473, Industrial Area, Patparganj, Delhi

प्राक्कथन

साम्प्रदायिक एवं लक्षित हिंसा रोकथाम विधेयक-2011 मात्र एक विवादास्पद प्रारूप ही नहीं, बल्कि उस सामाजिक दर्शन एवं दृष्टि का प्रतिनिधि एवं प्रतिबिम्ब भी है, जो भारतीय संविधान एवं समाज की सहमति को तोड़ना चाहता है। यह 'सहमति' क्या है? इसका सारगर्भित उत्तर संविधान की प्रस्तावना में अभिव्यक्त होता है; "हम भारत के लोग"। इन चार शब्दों में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, संस्कृति की अविरल प्रवाहित होने वाली धारा और सभी न्यूनताओं एवं अनचाही घटनाओं के बावजूद सामाजिक सौहार्द के प्रति ठोस आशावाद समाहित है। इस देश के वासी चाहे जो बोली बोलते हों, जिस भाषा को अपनी मातृभाषा मानते हों, जिस परिधान को मन या आस्था के कारण पहनते हों या अपनी पहचान का सूचक मानते हों, अपने विवेक एवं हृदय से जिस किसी पूजा-पद्धति को अनुकरणीय मानते हों या भले ही नास्तिक हों, देश का समाज व संविधान उनके बीच फर्क नहीं करता है। सामाजिक एवं संवैधानिक सहमति भेदभाव मुक्त जीवन की है। इसी को अधिष्ठान मानकर देश में संस्थाओं एवं कानूनों का निर्माण किया गया। यहां एक बात स्पष्ट करनी होगी कि सामाजिक चेतना ही संवैधानिक सहमति को प्रबलता प्रदान करती है। और इस सहमति के प्रति निष्ठा 'संवैधानिक देशभक्ति' की अवधारणा को जन्म देता है। जिस देश में समाज की सामूहिक चेतना में निष्पक्षता और विभिन्नता के प्रति स्वाभाविक आदर का भाव नहीं होगा वह देश 'बहुसांस्कृतिकवादी' या पंथनिरपेक्ष नहीं हो सकता है। ऐसा नहीं होने पर लोकतंत्र एवं पंथनिरपेक्षता दोनों ही बहुसंख्यकों के प्रभुत्ववादी आचरण और अपेक्षाओं का शिकार हो जाता है। इस्लामिक देशों में दूसरे पंथों के लोग न्यूनतम धार्मिक स्वतंत्रता से भी वंचित हैं। यूरोप पिछले दो सौ वर्षों से उदारवाद एवं नवउदारवाद की धाराओं का प्रतिनिधित्व करता रहा है। भारत के बुद्धिजीवियों का एक वर्ग इसे आदर्श प्रतिमान मानता रहा है। परंतु जेहादी आतंकवाद से आतंकित यूरोप के अधिकांश देशों कें बहुसांस्कृतिकवाद को 'असफल प्रयोग' घोषित कर दिया है। फ्रांस आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, स्वीटजरलैंड आदि देशों में बहुसांस्कृतिक नीतियों के विपरीत नए कानून बनाए जा रहे हैं। उनमें एक बुर्का पर प्रतिबंध भी शामिल है। यह पश्चिम के सामाजिक दर्शन में बदलाव का स्पष्ट संकेत है।

भारत ने 1947 में विभाजन की त्रासदी के बाद भी अपने स्वभाव एवं संस्कृति की अखंड आवाज़ को कमजोर नहीं होने दिया। धार्मिक स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की आजादी अक्षुण्ण रही है। उसी का प्रतीक है हमारा संविधान। इतिहास से सबक लेते हुए संविधान सभा ने पूजा-पद्धतियों के आधार पर देश के लोगों को अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक खांचों में बांटने को अप्राकृतिक, अस्वाभाविक एवं अवैधानिक माना था। संविधान सभा के दो सदस्यों, डा. एच.सी. मुखर्जी (जो ईसाई मतावलंबी थे) और तजामुल हुसैन ने एक प्रतिमान पेश किया जो सर्वस्वीकृत हुआ। हुसैन का मानना था कि उपनिवेशवादियों ने 'अल्पसंख्यक' अवधारणा को लागू किया था जो घातक सिद्ध हुआ। उन्होंने जोर देकर कहा था, 'पूजा-पद्धतियों के अंतर से कोई बहुसंख्यक या अल्पसंख्यक नहीं हो जाता है। अतः इसे 'अपने शब्दकोश से बाहर कर देना चाहिए।' मुखर्जी ने आगाह किया था कि यदि हम भारत को भविष्य में एक राष्ट्र बनाए रखना चाहते हैं तो संप्रदायों के आधार पर बहुसंख्यक एवं अल्पसंख्यक श्रेणियों के निर्माण का जोखिम नहीं उठा सकते हैं। हुसैन-मुखर्जी अधिष्ठान ने जिस सहमति को स्थापित किया उसी का परिणाम था कि भारत के संविधान में अल्पसंख्यक बहुसंख्यक अवधारणाओं को स्थान नहीं दिया गया है। अपवाद स्वरूप (अनुच्छेद 29–30) 'अल्पसंख्यक' शब्द का उपयोग हुआ है। इसे भी अपरिभाषित रखा गया।

परंतु राजनीतिक स्तर पर तात्कालिक स्वार्थ के लिए पहचान आधारित राजनीति को आगे बढ़ाया जाता रहा। दुर्भाग्य से बौद्धिक एवं राजनीतिक दोनों स्तरों पर इसका व्यवस्थित एवं ठोस प्रतिकार नहीं हो पाया। इसी का परिणाम है कि देश की आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों का आधार अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक श्रेणियों एवं अवधारणा को बनाया जा रहा है। संविधान सभा के सदस्यों ने यह कल्पना तक नहीं की होगी कि भारतीय राजनीति में इस स्तर तक वैचारिक पतन हो जाएगा कि औपनिवेशिक युग का भ्रामक और विभाजक विचार देश की राजनीति पर हावी हो जाएगा और राज्य की आर्थिक नीतियों का भी आधार सांप्रदायिक दृष्टिकोण हो जाएगा। देश में गरीबों, बेरोजगारों एवं जरूरतमंदों को धार्मिक पृष्ठभूमि के आधार पर सरकारी सहायता मिलती है।

इसी राजनीतिक मनोवृत्ति ने देश में दूसरी सहमति, 'विधि का शासन', को भी तोड़ने के लिए सत्तावादी राजनीति एवं अभियानवादी बुद्धिजीवियों को प्रेरित एवं उत्साहित किया। विधि के शासन का अर्थ है कानून के समक्ष समानता। लिंग, संप्रदाय, क्षेत्र, भाषा इत्यादि का भेदभाव नहीं किया जाना। पुलिस एवं प्रशासन इसी अधिष्ठान पर खड़ा है। समान न्याय व्यवस्था और समान आपराधिक कानून द्वारा देश शासित होता है। समानतावादी समाज की स्थापना के लिए यह आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। "सांप्रदायिक एवं लक्षित

हिंसा विधेयक-2011" इसी दूसरी सहमति पर प्रत्यक्ष प्रहार है। इसका वर्तमान प्रारूप देश में दो प्रकार के आपराधिक कानून, न्याय व्यवस्था एवं दंड का प्रावधान करता है। इसने देश के लोगों को दो वर्गों में बांट दिया है: बहुसंख्यकों को इसने 'प्रभुत्ववादी', 'दंगाई चरित्र' एवं 'हिंसात्मक प्रकृति' वाला माना है। दूसरी ओर इसने धार्मिक अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों के प्रभुत्ववाद एवं दंगाई चरित्र के कारण स्थायी रूप से 'वंचित' एवं 'पीड़ित' 'समूह' माना है। यह (समूह) वस्तुतः धार्मिक अल्पसंख्यकों का नया नामकरण है। 'समूह' में भाषाई अल्पसंख्यकों एवं अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को मात्र आक्रामक अल्पसंख्यकवाद पर पर्दा डालने के लिए रखा गया है। इसीलिए यह विधेयक संविधान के अंतर्गत बने सभी कानूनों एवं मर्यादाओं से अलग हटकर बहुसंख्यकों एवं अल्पसंख्यकों को दो कल्पित शत्रुतापूर्ण खेमों में बांटकर देखता है। आश्चर्य की बात है कि यह विधेयक यौन अपराधों की भी सांप्रदायिक व्याख्या एवं परिभाषा करता है। यह विधेयक यदि कानून बन गया तो तीव्र एवं तीक्ष्ण सांप्रदायिक ध्रुवीकरण का एक उपकरण बन जाएगा। सदियों के सौहार्द को समाप्त करने का एक कारण बन जाएगा।

भारत नीति प्रतिष्ठान का यह हस्तक्षेप पत्र (Intervention Paper) इसी विधेयक के प्रावधानों का विश्लेषण है।

राकेश सिन्हा

12 अगस्त 2011

सारांश

(i) प्रस्तावित सांप्रदायिक एवं लक्षित हिंसा रोकथाम विधेयक का निर्माण संसद के बाहर हुआ है। इस विधेयक को 'राष्ट्रीय सलाहकार परिषद' ने तैयार किया है, जिसकी अध्यक्ष श्रीमती सोनिया गांधी हैं। इसका प्रारूप तैयार करने वालों में जॉन दयाल, तीस्ता सीतलवाड़, फरहा नकवी, हर्ष मंदर जैसे नाम शामिल हैं। ये सभी भारत को 'बहुराष्ट्रीय राज्य' (Multinational State) मानते हैं। सामाजिक-राजनीतिक या कानून के क्षेत्र में इनका योगदान नगण्य है। इनकी पहचान अभियानवादी बुद्धिजीवियों के रूप में है। महज पूर्वाग्रहों के आधार पर विधेयक बनाकर राष्ट्र के ऊपर बहस के लिए थोप दिया गया है। दरअसल विधेयक प्रतिक्रियावाद की उपज है।

(ii) जाहिर है विधेयक तैयार करने में गृह मंत्रालय से राय मशविरा, उसके अधिकारियों से विमर्श कतई नहीं हुआ है। न ही संविधान विशेषज्ञों एवं शिक्षाविदों को सम्मिलित किया गया है। जिन लोगों ने सांप्रदायिकता, धर्मनिरपेक्षता, दंगों की प्रकृति एवं इतिहास पर गंभीर शैक्षणिक काम किया है, उनका या उनके लेखन का भी इस विधेयक में उपयोग नहीं किया गया है।[1]

(iii) इस विधेयक की आवश्यकता क्यों पड़ी? इसका उद्देश्य क्या है? सांप्रदायिकता एवं हिंसा रोकने के लिए पहले से मौजूद कानूनों के बावजूद इसे क्यों तैयार किया जा रहा है? इन विषयों पर एक शब्द भी नहीं कहा गया है। विधेयक की कोई प्रस्तावना नहीं है।

(iv) विधेयक में 9 अध्याय और 138 अनुच्छेद हैं। परंतु इसके पहले अध्याय का अनुच्छेद 3(ई) विधेयक की आत्मा है। बाकी सभी बातें इसी के इर्द-गिर्द घूमती हैं।

(v) विधेयक के 3 (ई) अनुच्छेद में देश के नागरिकों को दो वर्गों में बांटा गया हैः 'खास' (Privileged) और 'आम' (Commoners)। 'धार्मिक अल्पसंख्यकों', 'भाषाई अल्पसंख्यकों', 'अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों' को एक श्रेणी में रखा गया है जिसे 'समूह' (Group) कहा गया है। यह विधेयक उन्हें खास दर्ज़ा देता है। बाकी सबको 'दूसरों' (Others) के द्वारा संबोधित किया गया है और ये आमलोगों की श्रेणी में आते हैं।

(vi) अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए पहले से ही राष्ट्रीय स्तर पर आयोग हैं। इन आयोगों को सिविल कोर्ट का अधिकार भी प्राप्त है। उनके लिए विशेष कानून भी बना हुआ है। फिर इन्हें 'समूह' में क्यों रखा गया है? इसका औचित्यपूर्ण उत्तर राष्ट्रीय सलाहकार परिषद के पास नहीं है।

(vii) उसी तरह से भाषाई अल्पसंख्यकों को भी 'समूह' में सिर्फ दिखावा के लिए रखा गया है। धार्मिक एवं भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए बनी रंगनाथ मिश्र आयोग की रिपोर्ट सार्वजनिक हो चुकी है। विधेयक बनाने वाले सभी सदस्य इस रिपोर्ट से सहमत हैं। परंतु वे इस रिपोर्ट की एक महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय बात की जानबूझकर उपेक्षा कर रहे हैं। आयोग के अनुसार "भाषाई अल्पसंख्यक न जाति है, न वर्ग, न ही धर्म पर आधारित समुदाय। एक तालुका, जिला, प्रदेश में भाषाई अल्पसंख्यक हैं तो दूसरे में बहुसंख्यक।" रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए संविधान प्रदत्त संरक्षण यथेष्ट है। प्रश्न उठता है कि इन सबके बावजूद उन्हें क्यों धार्मिक अल्पसंख्यकों के साथ समूह में रखा गया है?

(viii) संक्षेप में सभी व्यावहारिक कारणों से 'समूह' का सीधा मतलब धार्मिक अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुस्लिम और ईसाइयों, से ही है। भाषाई अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को समूह में गुप्त मंशा (Hidden Agenda) को छिपाने के लिए रखा गया है।

(ix) विधेयक 'सकारात्मक भेदभाव' के सिद्धांत पर नहीं, बल्कि नाजीवादी मान्यता व दर्शन पर आधारित है। हिन्दुओं के प्रति यह विधेयक आक्रामक, संकीर्ण और नस्लवादी दृष्टि रखता है। यह मानता है कि भविष्य में सांप्रदायिक दंगों एवं लक्षित हिंसा के लिए अनिवार्यतः 'दूसरे' अर्थात हिंदू ही जिम्मेदार होंगे। पूरी हिन्दू सभ्यता, संस्कृति और हिन्दू समाज के चरित्र, उसके इतिहास, वर्तमान और भविष्य पर सीधा आक्रमण है। क्या दुनिया में ऐसी कोई न्याय प्रणाली या कानून है जो भविष्य की हिंसक, सांप्रदायिक या नस्लवादी घटना के लिए पहले से किसी समुदाय विशेष को जिम्मेदार घोषित करता हो? यह कानून ऐसा पहला उदाहरण होगा। कोई कानून किसी समुदाय को कैसे दंगाई, आक्रामक और हिंसक घोषित कर सकता है? रा.स.प. की यह दृष्टि तो नाजी दर्शन से मिलती-जुलती है।

1. उदाहरणार्थ विपिन चन्द्राः कम्यूनलिज्म इन मॉडर्न इंडिया, आर.एन.पी. सिंहः राइट्स एंड रॉंग (Riots & Wrongs), आशुतोष वार्ष्णेयः एथनिक कन्फलिक्ट एंड सिविल लाइफः हिन्दूज् एंड मुस्लिम्स् इन इंडिया; सिंह एवं वार्ष्णेय दोनों ने विधेयक को भारतीय संविधान के विरुद्ध बताया है।

(x) 'समूह' या 'समूह' के किसी सदस्य द्वारा यदि किसी हिन्दू पर उनके साथ दुर्भावना या सार्वजनिक रूप से अपमान करने या व्यवसाय अथवा जीविकोपार्जन में बाधा डालने की मात्र शिकायत को सच मानकर हिन्दू आरोपी पर आपराधिक मामला दर्ज़ हो जाएगा। इतना ही नहीं कथित आरोपी जिस सामाजिक-सांस्कृतिक या अन्य प्रकार की संस्था/संगठन से जुड़ा है, उसके पदाधिकारियों पर भी इस कानून के प्रावधानों के आधार पर आपराधिक मुकदमा चलेगा। पंजीकृत एवं अपंजीकृत दोनों प्रकार की संस्थाओं को इसमें शामिल किया गया है। अर्थात किसी यूथ क्लब या रामलीला कमेटी के सदस्य पर ऐसी कोई शिकायत होती है तो इन संगठनों के पदाधिकारी भी आरोपित व्यक्ति के कृत्य के लिए जिम्मेदार माने जाएंगे। परंतु किसी मुस्लिम/ईसाई द्वारा 'दूसरों' (हिन्दुओं) के साथ किया गया दुर्व्यवहार इस कानून के दायरे में नहीं आएगा। जाहिर है वे जिस संस्था से जुड़े हैं, उसके पदाधिकारी भी इससे मुक्त रहेंगे। श्री आर. वेंकट नारायणन के अनुसार यह "Hindu Apartheid Law" होगा।[2]

(xi) इस प्रकार राष्ट्रीय सलाहकार परिषद देश में दो प्रकार की आपराधिक दंड संहिता का प्रस्ताव कर रही है: एक धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए, और दूसरी हिंदुओं के लिए। भारतीय संविधान में 'विधि के समक्ष समानता' एक मौलिक अधिकार है। यह विधेयक इसका प्रत्यक्ष निषेध एवं उपहास करता है।

(xii) इस विधेयक के अनुसार "घृणा" या 'दुष्प्रचार' का तात्पर्य 'समूह' (अल्पसंख्यकों) के विरुद्ध लिखी-कही गई बाते हैं। और बहुसंख्यकों को इसके लिए जिम्मेदार माना गया है। अगर कोई भाषण/लिखित दस्तावेज़ अल्पसंख्यकों के अनुकूल नहीं हुआ तो उसे घृणा फैलाने वाला या उत्तेजना पैदा करने वाला कृत्य माना जाएगा। यह दंडनीय अपराध माना गया है। परंतु अल्पसंख्यकों द्वारा जारी बहुसंख्यक विरोधी दस्तावेज़ या अन्य सामग्री इस कानून के दायरे में नहीं आएगा।

(xiii) विधेयक में "शत्रुतापूर्ण वातावरण" नामक एक और प्रावधान है। अगर 'समूह' का कोई सदस्य यह महसूस करता है कि बहुसंख्यकों (हिंदुओं) द्वारा शत्रुतापूर्ण/प्रतिकूल वातावरण के कारण उसकी जीविका, व्यापार, निवास बाधित हो रहा है तो ऐसा करने वालों पर आपराधिक मुकदमा चलेगा। क्या यह विभिन्न धर्मावलंबियों के बीच सदियों से चली आ रही परस्पर निर्भरता को समाप्त नहीं कर देगा? क्या इस कानून के भय से आतंकित होकर कोई हिन्दू समूह के सदस्यों के साथ संयुक्त आर्थिक उपक्रम करना चाहेगा? यह विधेयक समूह के सदस्यों के बीच के झगड़े को

2. भारत नीति प्रतिष्ठान के ब्रेन स्टॉर्मिंग सेशन, 31 मई 2011

अनदेखा करता है। शिया और सुन्नी मुसलमानों और ईसाइयों या अनुसूचित जातियों/जनजातियों के बीच तनाव, व्यवसाय का बहिष्कार या अन्य किसी भी प्रकार का झगड़ा इस प्रावधान के अंतर्गत नहीं आता है। गुजरात के अन्देज (सानद तालुका, अहमदाबाद) गांव में 700 मुस्लिम परिवारों के बीच कुछ दलित परिवार भी रहते हैं। वहां पर एक फतवा जारी किया गया है, जिसमें मुस्लिमों द्वारा चलाए जा रहे वाहनों पर दलितों को सवारी नहीं कराने का निर्देश है। परंतु मौलिक अधिकारों का यह हनन इस कानून के अंतर्गत नहीं आएगा।

(xiv) समूह के बाहर के सामाजिक-सांस्कृतिक संगठनों के पदाधिकारियों को गैर-राज्यकर्ता (Non-State Actors) कहा गया है। उन्हें अपने संगठन के किसी भी सदस्य द्वारा जाने अनजाने में अल्पसंख्यकों के साथ किए गए कृत्य के लिए जिम्मेदार मान लिया गया है। क्या कोई व्यक्ति किसी संगठन का पदाधिकारी बनने का जोखिम लेगा?

(xv) 'पीड़ित' (Victim) का साधारण अर्थ होता है, किसी घटना का भुक्तभोगी व्यक्ति या समुदाय। परंतु विधेयक के अनुसार किसी सांप्रदायिक दंगे/हिंसा में 'समूह' (अल्पसंख्यक) का ही सदस्य अनिवार्यतः "पीड़ित" होगा। दूसरे शब्दों में बहुमत (हिन्दू) हमेशा आक्रामक और अपराधी होगा। किसी हिंसा में मारा गया हिन्दू 'पीड़ित' नहीं माना जाएगा।

(xvi) ऐसा लगता है जैसे विधेयक बनाने वाले भविष्य पुराण के लेखक हों। यह विधेयक भविष्य की घटनाओं के लिए न्याय, कानून, राजनीतिक-सामाजिक तीनों स्तरों पर "पीड़ित" और "अपराधी" की ब्रह्मवाक्य की तरह भविष्यवाणी करता है। आधुनिक इतिहास में ऐसा उदाहरण सिर्फ़ नाजी जर्मनी में ही मिलता है, जिसमें यहूदियों को जर्मनी की बदहाली के लिए स्थाई रूप से दोषी माना गया था। यह विधेयक उसी की पुनरावृत्ति है।

(xvii) इस विधेयक में यौन उत्पीड़न को भी सांप्रदायिक व नस्लवादी चश्मे से देखा गया है। 'समूह' के महिला सदस्य के साथ दूसरों (समूह के बाहर के लोगों) द्वारा लैंगिक अपराध को विधेयक गंभीर अपराध मानता है और कड़े दंड (7 वर्ष से लेकर आजीवन कारावास तक) का प्रावधान करता है। परंतु हिन्दू महिला के साथ यदि 'समूह' के सदस्यों के द्वारा छेड़छाड़, बलात्कार आदि होता है तो वह इस विधेयक के दायरे में नहीं आएगा। साथ ही 'समूह' के सदस्यों के बीच आपस में घटित यौन उत्पीड़न की घटना पर भी यह कानून धृतराष्ट्र बना रहेगा। उदाहरणार्थ एक महाविद्यालय की दो सहेलियों के साथ लैंगिक अपराध होता है और संयोग से एक हिंदू और दूसरी मुस्लिम है तो

दोनों के साथ अलग-अलग कानून लागू होगा, दोनों के अपराधियों को अलग-अलग सजा मिलेगी। पुलिस का व्यवहार दोनों के प्रति भी भिन्न होगा। यदि अल्पसंख्यक 'पीड़ित' छात्रा के पोस्टमार्टम या जांच में विलंब होता है तो दोषी अधिकारियों के लिए कर्तव्य अवहेलना के लिए तीन वर्ष सजा का प्रावधान है। परंतु हिन्दू छात्रा के साथ घटी घटना की जांच में विलंब होने पर इस कानून का कोई लेना-देना नहीं होगा। सामूहिक बलात्कार का अर्थ हिन्दू एवं अल्पसंख्यकों के संदर्भ में अलग-अलग होगा। विधेयक के अनुसार एक से अधिक अल्पसंख्यक महिला के साथ बलात्कार 'सामूहिक बलात्कार' की श्रेणी में आएगा।

(xviii) सांप्रदायिक एवं लक्षित हिंसा पर नियंत्रण के बहाने राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरों पर भरपूर शक्तिशाली संस्थाएं बनाई गई हैं। भारत की संघीय व्यवस्था की अवहेलना करने का अधिकार प्रदान कर दिया गया है। राष्ट्रीय प्राधिकरण (National Authority) को केंद्र एवं राज्य की पुलिस एवं नौकरशाही को भी इसके अधिकार क्षेत्र में ला दिया गया है।

(xix) राष्ट्रीय प्राधिकरण का गठन इस प्रकार किया गया है कि सात में से कम से कम चार सदस्यों का 'समूह' से होना अनिवार्य है। इनमें एक अल्पसंख्यक महिला का भी होना आवश्यक कर दिया गया है। अध्यक्ष और उपाध्यक्ष अनिवार्यतः 'समूह' से ही होगा।

(xx) 'कानून और व्यवस्था' राज्य का विषय है। लेकिन इस विधेयक में इसकी कोई सुधि नहीं ली गई है। इसे समूह से संबंधित न्यायालय में चल रहे मामलों में भी हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया गया है।

(xxi) सबसे रोचक बात है कि विधेयक नौकरशाही और पुलिस को मानसिक दबाव में रखता है। किसी भी सांप्रदायिक दंगे के लिए जिसमें 'समूह' के सदस्य 'पीड़ित' माने जाएंगे, पुलिस और नौकरशाही जिम्मेदार होगी और उनके लिए सश्रम कारावास के दंड का प्रावधान भी है। उन्हें हिन्दू गतिविधियों को रोकने, हिन्दू कार्यकर्ताओं और संगठनों पर सख्ती बरतने के लिए बाध्य किया गया है। यह विधेयक सांप्रदायिक चेतना से कहीं अधिक नाजीवादी सिद्धांत पर आधारित है। स्थानीय अधिकारियों की 'कर्तव्य अवहेलना' के लिए उसके वरिष्ठ अधिकारियों को भी उसी प्रकार कठोर सजा देने का प्रावधान है।

विभाजक रचना और नीति

प्रस्तावित विधेयक के पहले अध्याय को पढ़कर ही इसके निर्माताओं की सोच समझ में आ जाती है। इसके अनुच्छेद 3 (ई) में "समूह" नामक एक वर्ग बनाया गया है। यह परिभाषा देश के नागरिकों को आपराधिक कानून एवं न्याय, के स्तरों पर दो वर्गों में विभाजित करता है। पहले वर्ग को 'समूह' कहा गया है। इसमें धार्मिक अल्पसंख्यकों, भाषाई अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों को सम्मिलित किया गया है। शेष सभी लोगों को जिनमें ज्यादातर हिन्दू हैं उन्हें "दूसरा" (others) कहकर संबोधित किया गया है। इस वर्गीकरण का मतलब क्या है? इसका उत्तर इसी अध्याय के अनुच्छेद 3 (सी), 3 (एफ) और 3 (आई) में स्पष्ट हो जाता है।

3 (सी) में सांप्रदायिक दंगे की परिभाषा ही बदल दी गई है। मध्य युग एवं औपनिवेशिक काल से लेकर आज तक सांप्रदायिक दंगे का तात्पर्य दो समुदायों के बीच झगड़ा माना गया था। इसके दोषियों को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया से चिन्हित करना एवं भारत की आपराधिक दंड संहिता के प्रावधानों के अंतर्गत सजा भी दी जाती रही है। परंतु इस विधेयक में आरोपित को अपराधी माना गया। राष्ट्रीय सलाहकार परिषद के अनुसार 'सांप्रदायिक और लक्षित हिंसा' का तात्पर्य 'समूह' या समूह के सदस्यों पर 'सहज' या 'योजनाबद्ध' कार्रवाई है जिससे 'समूह' के सदस्यों को शारीरिक या संपत्ति की क्षति पहुंचती है। दूसरे शब्दों में 'समूह' के सदस्यों द्वारा बहुसंख्यकों पर यदि आक्रमण (कार्रवाई) होता है तो उसे 'सांप्रदायिक एवं लक्षित हिंसा' नहीं माना जाएगा।

इसलिए यह विधेयक दंगे या हिंसा से प्रभावित सभी व्यक्तियों को 'पीड़ित' (Victim) नहीं मानकर सिर्फ 'समूह' के सदस्यों को ही पीड़ित मानता है (देखें अनुच्छेद 3 जे)। इस प्रकार किसी सांप्रदायिक हिंसा में हिन्दू भले ही मारे गए हों, उनका घर जला दिया गया हो, अपंग, अनाथ, असहाय हो गए हों, परंतु यह कानून उन्हें किसी भी हालत में 'पीड़ित' नहीं मानेगा। वे इस कानून की नजर में दंगाई और अपराधी ही रहेंगे। आधुनिक समाज में राज्य द्वारा इस प्रकार का भेदभाव का उदाहरण अपवाद के रूप में ही मिलता है। नाजियों ने यहूदियों को जर्मनी की बदहाली के लिए दोषी माना था। नाजियों ने जर्मनी की पुलिस एवं प्रशासन को यहूदियों को अपराधी मानने के लिए बाध्य किया था। राष्ट्रीय सलाहकार परिषद नाजी जर्मनी के इसी सामाजिक दर्शन और दृष्टि से प्रेरित है।

"समूह" की दिखावटी संरचना

इस विधेयक पर चर्चा आगे बढ़ाने से पूर्व 'समूह' की प्रकृति और व्यावहारिक अर्थ समझना आवश्यक है। अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं भाषाई अल्पसंख्यकों को धार्मिक अल्पसंख्यकों के साथ 'समूह' में रखा गया है। इसका असली मकसद क्या है?

भाषाई अल्पसंख्यक

भाषाई अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों के बीच झगड़ा भारत के इतिहास में अपवाद के तौर पर ही मिल सकता है। भाषाई अल्पसंख्यक एक अस्थाई परिवर्तनशील अवधारणा है। तालुका, जिला, प्रदेश, क्षेत्र एवं राष्ट्रीय स्तर पर इसका न एक मापदंड है न ही एक स्वरूप। तभी तो "धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए राष्ट्रीय आयोग" (रंगनाथ मिश्र आयोग) ने अपनी रिपोर्ट में साफ तौर पर कहा है कि "भाषाई अल्पसंख्यक न जाति है, न वर्ग है, न ही धर्म के आधार पर समुदाय"।[3] आयोग ने उनके लिए संविधान के प्रावधानों एवं कानूनों को यथेष्ट माना है। रिपोर्ट में कहीं भी उनकी असुरक्षा या उनके साथ भेदभाव की बात नहीं कही गई है। फिर भाषाई अल्पसंख्यकों को 'समूह' में रखने का औचित्य क्या है? इसका कोई तार्किक उत्तर राष्ट्रीय सलाहकार परिषद के पास नहीं है। लिहाजा वे सभी रंगनाथ मिश्र आयोग की रिपोर्ट के अंध समर्थक भी हैं।

अनुसूचित जाति व जनजाति

दुर्भाग्य से पिछले कुछ वर्षों से अनुसूचित जातियों का 'उपयोग' अल्पसंख्यकवादी राजनीति के सुरक्षा कवच के रूप में किया जा रहा है। 2005 में सच्चर कमेटी का गठन मुसलमानों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक

3. देखें रंगनाथ मिश्र आयोग की रिपोर्ट, खंड 1, पृ. 39

आदि प्रश्नों का अध्ययन के लिए किया गया था। इस कमेटी ने 2007 में अपनी रिपोर्ट केंद्र सरकार को सौंपी। कमेटी ने मुसलमानों के साथ कथित भेदभाव के आरोप का निदान करने के लिए 'समान अवसर आयोग' बनाने की अनुशंसा की। अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय ने 'समान अवसर आयोग' के लिए जो विधेयक तैयार किया है, उसमें अनुसूचित जातियों को भी अल्पसंख्यकों के साथ शामिल किया गया है। समान अवसर आयोग बनाने की अनुशंसा जिस सच्चर कमेटी ने की थी, उसका कार्य क्षेत्र सिर्फ मुसलमान ही था। दूसरा, अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय, जिसने इस विधेयक को तैयार किया, के अधिकार क्षेत्र में भी अनुसूचित जाति नहीं आती है। फिर भी समान अवसर आयोग ने विधेयक में अनुसूचित जातियों को अल्पसंख्यकों के साथ क्यों रखा यह बात विचारणीय है।[4] इस विधेयक में भी उसी का अनुकरण किया गया। लिहाजा प्रश्न उठता है कि SC & ST (Prevention of Atrocities) Act 1989 में क्या कमी है? अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिए अलग से राष्ट्रीय आयोग है? उन्हें सिविल कोर्ट का अधिकार प्राप्त है। आयोग बखूबी अपना काम कर रहा है। फिर अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को धार्मिक अल्पसंख्यकों के साथ राष्ट्रीय प्राधिकरण के दायरे में लाने से उन्हे क्या लाभ होगा? ऐसा कौन सा अधिकार है जो अनुसूचित जातियों/जनजातियों के राष्ट्रीय आयोगों के पास नहीं है, और इस विधेयक के अंतर्गत बनी राष्ट्रीय प्राधिकरण के पास है। यदि ऐसा है तो इन आयोगों की शक्ति बढ़ाना निदान है या इनका अवमूल्यन करना। वस्तुतः 'समूह' और राष्ट्रीय प्राधिकरण के अंतर्गत अनुसूचित जातियों/जनजातियों को रखने से इनके लिए पहले से कार्यरत राष्ट्रीय आयोगों को अप्रासंगिक होने का खतरा रहेगा।

विधेयक निर्माताओं का अनुसूचित जातियों के प्रति कितना प्रेम है इसे इस प्रसंग से समझा जा सकता है। अबुसलेह शरीफ सच्चर कमेटी के सदस्य सचिव थे। वे सांप्रदायिक एवं लक्षित हिंसा विधेयक बनाने वालों में भी हैं। शरीफ के हस्ताक्षर एवं अनुमोदन से ही सच्चर कमेटी के मुस्लिम सदस्यों की एक उपसमिति बनी। इस उपसमिति के अनुसार अनुसूचित जातियों के लिए लोकसभा एवं विधानमंडल में आरक्षण मुस्लिम प्रतिनिधित्व में बाधा पहुंचाता है। अतः इसने अनुशंसा की थी कि उन सभी चुनाव क्षेत्रों को अनारक्षित कर देना चाहिए जहां मुसलमानों की पर्याप्त संख्या है। और भविष्य में मुस्लिम आबादी वाले चुनाव क्षेत्रों को कभी भी अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित नहीं किया जाना चाहिए।[5] क्या इससे और भी खतरनाक और अनुसूचित जाति विरोधी दृष्टिकोण हो सकता है? क्या यह भारत के मूल चरित्र को बदलने का प्रयास नहीं था?

4. देखें भ्रामक समानताः समान अवसर आयोग की समीक्षा, राकेश सिन्हा, भा.नी.प्र., 2009
5. सच्चर पेपर्स, फाइल संख्या, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम लाइब्रेरी, तीनमूर्ति, नई दिल्ली.

संविधान सभा में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की विशेष सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों को स्वीकार करते हुए उन्हें संरक्षण देने का प्रावधान किया गया था। तब भी मुस्लिम सदस्यों की आपत्ति पर अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधि श्री नागप्पा ने तार्किक जवाब देकर उन्हें चुप कर दिया था। ऐसे अनेक कानून हैं, जिनका मकसद अनसूचित जातियों को सामंती प्रताड़ना से बचाना है। इनमें Protection of Civil Rights Act 1955, The Bonded Labour System (Abolition) Act, The Child Labour (Prohibition & Regulation) Act 1968 और Scheduled Caste and Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Act 1989 प्रमुख हैं। फिर उन्हें इस सांप्रदायिक एवं लक्षित हिंसा विधेयक के दायरे में लाने के पीछे निहितार्थ क्या है? इसे समझना कठिन नहीं है। उन्हें सिर्फ मुखौटे के रूप में उपयोग किया जा रहा है। अध्याय दो के अनुच्छेद 6 में कहा गया है कि यह कानून SC & ST (Prevention of Atrocities) Act 1989 के अतिरिक्त लागू होगा। तो क्या एक अपराध के लिए दो समानान्तर कानूनों के अंतर्गत मुकदमा चलेगा, समानान्तर जांच होगी, दो प्रकार के फैसले होंगे एवं दो तरह के दंड दिए जाएंगे? यह न्याय के सिद्धांत का मखौल तो है ही, अनुसूचित जाति एवं जनजातियों की संस्थाओं का अवमूल्यन करने का एक सुनियोजित प्रयास भी है। क्या राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने ऐसा करते समय अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के सांसदों, उनके दोनों आयोगों एवं बुद्धिजीवियों से परामर्श किया है?

इस प्रकार सभी व्यावहारिक कारणों से यह कानून सिर्फ ईसाइयों एवं मुसलमानों को विशेषाधिकार देने की मंशा से बनाया गया है। अनुसूचित जातियों को शामिल करने के पीछे एक दूरगामी लक्ष्य है। वनवासी क्षेत्रों में ईसाई मिशनरियों द्वारा धर्मांतरण के प्रयास में जो संभावित विवाद होगा उसमें हिन्दू संगठनों पर इस कानून का शिकंजा रहेगा। लेकिन ईसाई एवं वनवासियों (आदिवासी) के बीच संघर्ष इस कानून के दायरे से बाहर होगा। अतः धर्मांतरण के अभियान में मिशनरियों के हाथों में यह दोधारी तलवार की तरह होगा।

विधि के शासन का प्रतिकार

भारत के संविधान ने विधि के शासन (Rule of Law) की स्थापना की है। संविधान के अनुच्छेद 14 में विधि के समक्ष समानता एवं विधि के समान संरक्षण का मौलिक अधिकार भारत के सभी नागरिकों को प्राप्त है। अनुच्छेद का अनिवार्य निहितार्थ है कि विधि निर्माण एवं क्रियान्वयन में अतार्किक आधारों पर कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा। ऐसा नहीं हो इसलिए संविधान के अनुच्छेद 15 में उन आधारों को भी स्पष्ट

कर दिया गया है जो पहली ही दृष्टि में अतर्कसंगत माना जाएगा। इन आधारों में पंथ को सम्मिलित करते हुए आधार पर भेदभाव का स्पष्टतः निषेध किया गया है। जाहिर है कि सांप्रदायिक एवं लक्षित हिंसा विधेयक विधि के शासन की प्रत्यक्ष अवहेलना है। यह समुदायों के बीच भेदभाव को संस्थागत एंव वैधानिक स्वरूप प्रदान करता है। यह कानून धर्म को आधार बनाकर सांप्रदायिक एवं हिंसक कृत्यों के बीच भेद करते हुए खास समुदाय को विशेष संरक्षण प्रदान करता है।

परस्पर निर्भरता पर घातक प्रहार

विधेयक के अनुच्छेद 3 (एफ) में जो प्रावधान है, वह पूरे समाज को दो शत्रुतापूर्ण खेमे में बांट देगा। इसमें 'समूह के प्रति कटुतापूर्ण वातावरण' को परिभाषित किया गया है। इसके अनुसार 'दूसरों' (अभिप्राय प्रायः हिन्दू) द्वारा कोई भी मौखिक, लिखित, सांकेतिक कार्य जो, समूह के सदस्यों के व्यवसाय, निवास, सम्मान में क्षति पहुंचाता है, उसे समूह के प्रति कटुतापूर्ण भाव माना जाएगा। इस अनुच्छेद में निम्नलिखित पांच प्रमुख बातों का उल्लेख किया गया है:

(i) समूह के सदस्यों के व्यापार या व्यवसाय का बहिष्कार करना या उसके जीवन को दूभर बनाना;

(ii) समूह के सदस्यों को सार्वजनिक सेवाओं, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन आदि में बहिष्कार कर उस व्यक्ति का अपमान करना।

(iii) समूह के सदस्यों को मौलिक अधिकारों से वंचित करना या उसके लिए धमकी देना

(iv) समूह के सदस्यों को अपने स्थान एवं जीविकोपार्जन से बिना उसकी स्वीकृति के वंचित करना

(v) और अन्य कोई कार्य जो समूह या उसके सदस्य के प्रति कटुतापूर्ण वातावरण बनाता है।

जाहिर है कि यह प्रावधान सार्वजनिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन में समूह और गैर-समूह के बीच एक दीवार खड़ा करता है। सदियों से भारत में लोग सह-जीवन जी रहे हैं। विभिन्न धर्मों व जातियों के लोग एक मुहल्ले, गली, गांव, शहर और कस्बे में रहते आए हैं। एक ही मकान में ऊपर-नीचे, अलग-अलग भाषा, बोली, जाति, धर्म, क्षेत्र के लोग रहते हैं। ऐसे में यदा-कदा सामाजिक आर्थिक जीवन में विवाद, मनमुटाव या संघर्ष की संभावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता है। इसे संविधान के दायरे में कानून एवं न्यायालय

द्वारा सुलझाया जाता रहा है। परंतु यह विधेयक एक ऐसी परिस्थिति को जन्म देगा जिसका दूरगामी परिणाम राष्ट्रीय एकता के लिए घातक सिद्ध होगा। हिन्दू एवं मुस्लिम पड़ोसी के बीच यदि तनाव किसी विषय पर होता है तो इस प्रावधान का सहारा लेकर अल्पसंख्यक समुदाय का सदस्य हिन्दू पड़ोसी पर कटुतापूर्ण वातावरण बनाने, धमकी देने, जीवन दूभर करने का आरोप लगा सकता है। यह कानून हिन्दू को स्वयमेव 'अपराधी' मान लेगा। अब उसे अपने को निर्दोष साबित करने की जिम्मेदारी होगी। और वह भी इसी कानून के अंतर्गत राष्ट्रीय या राज्य प्राधिकरणों द्वारा बनाए गए न्यायालय के सामने अर्थात देश के शेष कानून न्याय व्यवस्था निष्प्रभावी बनी रहेगी।

इसी प्रकार मेरठ, मुरादाबाद, बनारस एवं कोलकाता से लेकर कन्याकुमारी, दिल्ली अर्थात पूरे देश में हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई आदि जीवन के सभी क्षेत्रों, यथा शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यापार आदि में परस्पर निर्भर हैं। इसका आधार आपसी विश्वास, भ्रातृत्व एवं सामाजिकता है। यही कारण है कि भारतीय बाजार, उद्योग जगत, व्यावसायिक दुनिया एवं गांव से लेकर शहर तक आर्थिक क्रियाओं में धर्म व जाति की दीवार या अड़चन नहीं आता है। भारत में आर्थिक गतिविधियों का यह मिश्रित स्वरूप एक ऐतिहासिक सत्य है। परंतु यह प्रावधान परस्पर सहयोग एवं सहजीवन पर आधारित आर्थिक गतिविधियों को जोखिम भरा बना देता है। व्यापार, संयुक्त उपक्रम, क्रेता-विक्रेता, नियोक्ता- कर्मचारी के बीच विवाद, रस्साकस्सी, प्रतिस्पर्द्धा होना अस्वाभाविक नहीं है। यदि इन घटनाओं में बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक शामिल हैं तो इस कानून के अंतर्गत इन आर्थिक विवादों की सांप्रदायिक व्याख्या की जा सकती है। समूह का सदस्य बहुसंख्यक पर जीविकोपार्जन पर आघात करने एवं जीवन दूभर बनाने का आरोप मढ़ सकता है।

उसी प्रकार कोई हिन्दू मकान मालिक 'समूह' के किराएदार को बिना उसकी इच्छा से हटाता है तो वह भी इस कानून के दांवपेंच में फंस सकता है। यह मामला भारत की न्यायिक व्यवस्था के अंतर्गत नहीं आकर राष्ट्रीय प्राधिकरण के दायरे में आएगा। इस अनुच्छेद को इतना खुला रखा गया है कि हिन्दुओं पर कभी भी कोई आरोप लग सकता है। अल्पसंख्यक दुकानदार/व्यवसायी प्रतिस्पर्द्धा में पिछड़ने पर इस कानून का सहारा लेकर अपने प्रतिद्वंद्वियों को प्रताड़ित कर सकता है। अगर एक भी ऐसी घटना घट गई तो जाहिर है समाज में इससे अविश्वास, आशंका और अनिश्चितता का वातावरण बनेगा। फलतः इससे लेन-देन, व्यापार-व्यवसाय, रोजगार सबसे अधिक प्रभावित होगा। संप्रदायों के बीच जीविकोपार्जन, व्यवसाय एवं अन्य आर्थिक गतिविधियों में परस्पर निर्भरता का अंत हो जाएगा। विधेयक बहुसंख्यक समाज एवं अल्पसंख्यकों के बीच एक ऐसी दीवार खींच देना चाहता है, जिससे परस्पर संवाद और सहानुभूति का स्थान ध्रुवीकरण और कटुता ले ले। द्विराष्ट्रवाद यह नहीं तो और क्या है?

लैंगिक अपराधों का नाजीकरण

अनुच्छेद 7 के अनुसार यह कानून 'समूह' के सदस्य के विरूद्ध किया गया यौन-उत्पीड़न को ही लैंगिक अपराध मानेगा। अर्थात किसी अल्पसंख्यक समुदाय की महिला सदस्य के साथ किसी बहुसंख्यक समुदाय के असामाजिक तत्व द्वारा किया गया दुर्व्यवहार तो लैंगिक अपराध होगा परंतु अल्पसंख्यक समुदाय के असामाजिक तत्वों द्वारा बहुसंख्यक समाज के महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न पर यह कानून मौन होगा, इसे इससे कोई लेना देना नहीं होगा। उल्टे असामाजिक तत्व अल्पसंख्यक पृष्ठभूमि के कारण इस कानून का दुरुपयोग अपने बचाव में कर सकता है। पहली बार किसी कानून ने असामाजिक तत्वों के सामाजिक-धार्मिक पृष्ठभूमि को दंड एवं न्याय के लिए बुनियादी आधार बनाने का काम किया है। इसके विभिन्न श्रेणियों के लिए कम से कम सात वर्ष से लेकर दस, बारह, चौदह एवं आजीवन सश्रम कारावास और जुर्माना का प्रावधान (अनुच्छेद 114 (ए) से (ई)) किया गया है। इस विधेयक ने सामूहिक बलात्कार की एक नई परिभाषा दी है। समूह के किसी एक से अधिक महिला के साथ बलात्कार सामूहिक बलात्कार है। लेकिन यह बात हिन्दू महिलाओं पर लागू नहीं है। क्या दुनिया के किसी हिस्से में ऐसा प्रावधान है जो दो धर्म के आधार पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न पर अलग-अलग दृष्टि रखता हो? दूसरी तरफ एक अनुसूचित जाति की महिला के साथ अल्पसंख्यक समुदाय के द्वारा किया गया यौन उत्पीड़न भी इस कानून के दायरे में नहीं आएगा। 2008 में इमराना की घटना ने समाज को सकते में डाल दिया था। उसके श्वसुर ने उसके साथ बलात्कार किया और इस्लामिक फतवा ने उसे अपने श्वसुर के साथ रहने का आदेश दिया। यह कानून इमराना जैसे मामलों पर चुप रहेगा क्योंकि वह अल्पसंख्यक समुदाय ('समूह') के बीच की बात है और कोई बहुसंख्यक इससे जुड़ा नहीं है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रहार

इस विधेयक का अनुच्छेद 8 'घृणा-दुष्प्रचार' को भी नाजीवादी अंदाज से परिभाषित करता है। 'समूह' या 'समूह' के सदस्य के प्रति बहुसंख्यकों का लिखित, मौखिक, विज्ञापन या संकेत द्वारा किया गया कोई भी ऐसा कार्य जो समूह के प्रति 'उत्तेजना' या 'हिंसा' पैदा करने वाला हो सकता है, इस प्रावधान के मुताबिक 'घृणा दुष्प्रचार' है। इसका निर्णय भी इस कानून द्वारा गठित प्राधिकरण द्वारा ही होगा। इसके निहितार्थ क्या है:

(1) अल्पसंख्यकों के मन, भावना, इच्छा को समझे बिना कोई भाषण या लेख घृणा/दुष्प्रचार की श्रेणी में आ जाएगा। पर्दा प्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह जैसी बुराइयों पर प्रहार करना चाहिए एवं कर सकते हैं परंतु बुर्का के औचित्य पर तार्किक संवाद भी सांप्रदायिक उत्तेजना फैलाने वाला मान लिया जाएगा।

(2) ऐसी स्थिति में क्या अल्पसंख्यक समुदाय से जुड़े सामाजिक-धार्मिक व सांस्कृतिक पक्षों पर स्वतंत्र विमर्श हो सकता है? क्या धार्मिक विषयों पर बहस हो सकती है? इन सब में घृणा फैलाने, उत्तेजित करने का आरोप अन्तर्निहित होगा। अल्पसंख्यकों की कुरीतियों पर बोलना जोखिम से भरा होगा।

(3) हिन्दुओं, हिन्दू संगठनों, हिन्दू देवी-देवताओं, धार्मिक ग्रंथों पर अल्पसंख्यकों द्वारा आलोचनात्मक विमर्श, आपत्तिजनक टिप्पणी इसके दायरे में नहीं आएगा। बहुसंख्यकों के विरुद्ध बोलने, दुष्प्रचार करने में उनके सामने इस कानून का अड़चन नहीं आएगा।

(4) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एवं आलोचनात्मक मूल्यांकन की परंपरा समाप्त हो जाएगी। इतिहास के तथ्यों एवं तर्कों को अल्पसंख्यक केंद्रित होकर ही उद्धृत करना होगा। क्या इसका परिणाम यह नहीं होगा कि भारत के चिंतकों, लेखकों, इतिहासकारों की लेखनी भी 'दुष्प्रचार' के दायरे में आ जाएगी?

आधुनिक भारत के तीन बड़े नामों से जुड़ी घटनाओं को देखकर इस कानून के दुष्प्रभाव एवं दुरुपयोग की संभावना को समझा जा सकता है-

(क) कांग्रेस के अध्यक्ष रह चुके समाजवादी नेता आचार्य जे.बी. कृपलानी के सात भाइयों में से दूसरे नम्बर के भाई का इस्लाम में धर्मांतरण हो गया था। वह इतना कट्टर बन गया कि उसने एक दिन अपने पांचवे नंबर के भाई का अपहरण कर इस्लाम में धर्मांतरित करा दिया। वह मात्र 12 वर्ष का था और तीसरी कक्षा का छात्र था। परिवार को इस अपहृत बालक का कोई सुराग नहीं मिल पाया। बाद में पता चला कि उसे काबुल की सीमा पर ले जाया गया, जहां वह युद्ध में मारा गया। इस प्रकार कृपलानी ने अपने भाइयों का धर्मांतरण के बाद जो टिप्पणी की वह गौरतलब है। इस्लाम में धर्म तत्व इतना हावी हो जाता है कि व्यक्ति 'धर्म और दूसरी चीजों के बीच अंतर नहीं

कर पाता है। उन्होंने कहा कि Proslelytizing Religions में इस प्रकार (अपहरण के द्वारा) धर्मांतरण को विशेषता मानी जाती है।[6] बच्चे के अपहरण के बाद धर्मांतरण को तो इस कानून द्वारा संरक्षण मिलेगा। परंतु कृपलानी की टिप्पणी को अल्पसंख्यकों के प्रति आक्रामक/दुष्प्रचार मानकर सजा मिलेगी।

(ख) दूसरा उदाहरण सर्वोदयी नेता लोकनायक जयप्रकाश नारायण से जुड़ा हुआ है। मुस्लिम लीग ने उन पर बिहार (1946) में राहत कार्यों के दौरान हिन्दुओं को मुसलमानों के खिलाफ भड़काने का आरोप लगाया था। यह कानून होता तो जे.पी. दंगाई के रूप में कारावास की सजा पाते।

(ग) तीसरा उदाहरण मार्क्सवादी चिंतक बी.टी. रणदिवे से संबंद्ध है। केरल में पहली कम्युनिस्ट सरकार ने पचास के दशक में नई शिक्षा नीति लागू की। इसका विरोध कैथोलिक संचालित स्कूल प्रबंधनों ने सड़क पर आकर किया। तब मार्क्सवादी सिद्धांतकार बी.टी. रणदिवे ने कैथोलिकों को 'विश्व प्रतिक्रियावाद का एजेंट' घोषित करते हुए उन पर केरल में शिक्षा पर एकाधिकार स्थापित करने एवं बाहर से आए धन का दुरुपयोग का आरोप लगाया था। यह कानून होता तो रणदिवे को कैथोलिकों की छवि एवं चरित्र पर आक्रमण करने, उनके खिलाफ लोगों को भड़काने का आरोप लग जाता और वे भी कृपलानी एवं जे.पी. की तरह घृणा-दुष्प्रचार फैलाने के अपराधी मान लिए जाते। क्या कृपलानी, जे.पी., रणदिवे जैसे चिंतकों पर अल्पसंख्यकों के विरूद्ध उत्तेजनापूर्ण टिप्पणी के लिए मरणोपरांत मुकदमा चलाया जाएगा? यह प्रावधान अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर नाजीवादी आघात है। विधेयक में अल्पसंख्यकों के मनोनुकूल भाषा, भाव, भंगिमा, विचार, संवाद नहीं होने पर तीन साल तक की सजा (अनुच्छेद 115) का प्रावधान है।

इसके द्वारा इतिहास के पृष्ठों, सांस्कृतिक-सामाजिक विमर्शों और रचनात्मक लेखनी पर अघोषित सेंसरशिप लग जाएगा। इतिहासकार मुशीरूल हसन के अनुसार लाल-बाल-पाल (उग्र राष्ट्रवादी सिद्धांतकारों) ने अपनी लेखनी एवं कार्यक्रमों से स्वतंत्रता आंदोलन से मुसलमानों को दूर करने का काम किया था। तो क्या लाल-बाल-पाल, महर्षि अरविन्द की रचनाओं का वही अंश पाठ्यपुस्तकों में उद्धृत होगा, जिसे इस कानून के तहत अल्पसंख्यक समुदाय को अलग-थलग करने वाला, अर्थात दुष्प्रचार नहीं माना जाएगा। क्या लाल-बाल-पाल के लेखन को अल्पसंख्यकों के मन, मस्तिष्क और मनोवृत्ति के आलोक में संपादन करना अनिवार्यता बन जाएगी?

6. Transcript file no. P.P. 16-17 नेहरू मेमोरियल एंड म्यूजियम लाइब्रेरी, तीनमूर्ति, नई दिल्ली

'समूह कानून' बनाम 'सामान्य कानून'

अनुच्छेद 9 और 129 भारतीय संविधान के अंतर्गत बने कानूनों की सभी मर्यादाओं एवं सीमाओं से ऊपर है। इस पर किसी कानून का अंकुश नहीं हो सकता है। इस प्रावधान का लक्ष्य हिन्दू संगठनों, हिन्दू सामाजिक-सांस्कृतिक व धार्मिक गतिविधियों पर वैधानिक प्रहार है। समूह या समूह के सदस्यों के प्रति 'निरंतर', 'व्यवस्थित' रूप से बहुसंख्यकों द्वारा चलने वाली गतिविधियां जिससे समूह के प्रति हिंसा या हिंसा का खतरा या उन्हें 'दबाये जाने की बात' हो, उसे संगठित सांप्रदायिक एवं लक्षित हिंसा मानी गई है। इसमें निम्न बातों पर गौर करने की आवश्यकता है-

(i) इस प्रावधान के अनुसार बहुसंख्यकों की कथित 'स्वतःस्फूर्त' एवं 'नियोजित' गतिविधियों को निशाना बनाया गया है। उस संगठन को भी निशाना बनाया गया है जिसके प्रभाव में गतिविधयां हो रही हैं।

(ii) प्रावधान में इन गतिविधियों के लिए जिन दो विशेषणों का उपयोग किया गया है, वह उसकी गुप्त मंशा (Hidden Agenda) को प्रदर्शित करता है। ये दो विशेषण हैं 'निरंतर' एवं 'व्यवस्थित' गतिविधियां। अर्थात किसी हिन्दू संगठन द्वारा संगठनात्मक एवं वैचारिक काम 'निरंतर' एवं 'व्यवस्थित' गतिविधियों के दायरे में आएगा। जाहिर है उसे यह प्रावधान 'समूह' (अल्पसंख्यकों) के लिए संभावित खतरा मान लेगा। किसी भी गतिविधि के लिए हिन्दू संगठन एवं उसकी विचारधारा पर दोषारोपण कर उन्हें कठघरे में खड़ा कर देना आसान होगा।

(iii) इस प्रकार के प्रावधान के अनुसार गैर कानूनी तरीके से की जा रही वे सभी गतिविधियां जो समूह के सदस्यों को कुंठित या दबाने के उद्देश्य से की जा रही हों संगठित सांप्रदायिक हिंसा नहीं मानी जाएगी। "गैर कानूनी" गतिविधियों को क्या वर्तमान कानून रोकने में सक्षम नहीं है?अगर है तो यह प्रावधान क्यों लाया गया है? या 'गैर कानूनी' की राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा नई परिभाषा गढ़ी जाएगी?'

अनुच्छेद 9 (2) के अनुसार अगर किसी स्थान पर व्यवस्थित एवं निरंतर चलने वाली गतिविधियां 'अवैधानिक' रूप से चलती रही तो वहां की पुलिस एवं प्रशासन को संगठित, सांप्रदायिक एवं लक्षित हिंसा रोकने में नाकामयाब माना जाएगा। अर्थात राष्ट्रीय प्राधिकरण/राज्य प्राधिकरण या अल्पसंख्यकों की

संस्थाएं, जिस हिन्दू संगठन या हिन्दुओं की निरंतर गतिविधियों को अपने लिए नुकसानदायक मानेंगी, वे सभी गतिविधियां, संगठन और कार्यकर्ता एवं तत्पश्चात प्रशासन एवं पुलिस इस प्रावधान के अनुसार अपराधी घोषित हो जाएंगे। यह कानून 'अल्पसंख्यक वीटो' का अन्वेषण करता है।

किसी हिन्दू संगठन द्वारा निरंतर सभा व संगोष्ठी, साप्ताहिक या दैनिक गतिविधि को अल्पसंख्यकों के विरुद्ध घोषित करना प्रशासन एवं पुलिस की बाध्यता बन जाएगी। अनुच्छेद 9 को अनुच्छेद 129 से जोड़ दिया गया है। अनुच्छेद 9 के अंतर्गत 'अपराध' घोषित के लिए बहुसंख्यक समाज के लोगों, संगठनों या प्रशासन एवं पुलिस को अनुच्छेद 129 के अंतर्गत सजा दी जाएगी। यह सजा असीमित होगी यानी उस पर कोई सीमा नहीं होगी अर्थात वर्तमान सामान्य कानून, न्याय, दंड व्यवस्था के ऊपर यह होगा। यह राष्ट्रीय सलाहकार परिषद का नाजीनुमा एक फरमान है। यह कानून भारतीय संविधान की उपेक्षा और अवहेलना दोनों है।

हिन्दू संगठनों को वित्तविहीन करने की साजिश

अनुच्छेद 10 में समूह के विरुद्ध अपराध में संलग्न व्यक्ति या उससे जुड़े संगठन को वित्तीय आ अन्य सहायता देने के आरोपी को गुनाहगार मानकर तीन वर्ष तक की सजा का प्रावधान किया गया है (अनु. 117)। यह सिर्फ बहुसंख्यक को वित्तीय सहायता देने वालों पर ही लागू होगा। गलती से उस संगठन का कोई व्यक्ति अपराधी हो गया तो चंदा देने वाले भी जेल भेज दिए जाएंगे। रामलीला के लिए दिया गया चंदा, चंदा देने वाले के लिए गले की फांसी बन जाएगी। अगर रामलीला कमेटी का कोई सदस्य 'समूह' द्वारा आरोपित हो गया। दूसरी तरफ मुस्लिम/ईसाई अपराधियों को वित्तीय सहायता या मदद करना इस कानून की नजर में कतई गुनाह नहीं है।

अल्पसंख्यक-परस्त नौकरशाही एवं पुलिस

इस विधेयक का एक अत्यंत ही खतरनाक पहलू है। पुलिस और नौकरशाही दोनों को वैचारिक दायरे में काम करने के लिए कानूनी तौर पर बाध्य किया जाएगा। सांप्रदायिक दंगों के बाद या सांप्रदायिक तनाव या शांति की स्थिति इन सभी परिस्थितियों में उन्हें एक निश्चित दृष्टिकोण, पूर्वाग्रह और भयग्रस्त होकर ही कार्रवाई करनी पड़ेगी। यह विधेयक इस मान्यता पर आधारित है कि नौकरशाही एवं पुलिस दोनों अल्पसंख्यक विरोधी एवं पूर्वाग्रहयुक्त है। राष्ट्रीय सलाहकार परिषद मानती है कि सांप्रदायिक एवं लक्षित हिंसा कानून

उन्हें निष्पक्ष बनाने का काम करेगा। नाजी जर्मनी में नाजियों ने भी अप्रैल 1933 में Law for the Restoration of the Professional Civil Service बनाया था। उनकी भी मान्यता थी कि पुलिस और प्रशासन यहूदी परस्त है और यह कानून उन्हें निष्पक्ष बनाएगा। इस तरह की मान्यताएं लोकतांत्रिक एवं पंथनिरपेक्ष समाज को ध्वस्त करने का काम करती हैं।

इस विधेयक में अनेक ऐसे प्रावधान रखे गए हैं जो सांप्रदायिक/आतंकवादी घटनाओं की जांच में न सिर्फ रूकावट सिद्ध होगी, बल्कि असामाजिक एवं राष्ट्र विरोधी ताकतों को और देश के भीतर पनपे और पले (Home Grown) आतंकवाद समर्थकों को खुलेआम समर्थन एवं पनाह मिलेगी। अनुच्छेद 12 के अनुसार 'समूह' के सदस्य से पूछताछ करने, इकबालिया बयान लेने, उसे सजा देने या पुलिसिया या प्रशासनिक धमकी देने के क्रम में यदि उसे मानसिक या शारीरिक पीड़ा पहुंचती है तो यह कानून उसे 'यातना' या 'प्रताड़ना' (Torture) मानेगा। ऐसी हालत में क्या कोई नौकरशाह या पुलिस स्वतंत्र, भयमुक्त एवं निष्पक्ष जांच कर सकती है? अपराधी या संदेहास्पद व्यक्ति की अल्पसंख्यक पृष्ठभूमि पुलिस/प्रशासन को भयभीत करता रहेगा। जो लोग प्राधिकरण में होंगे उन्हीं के जैसे प्राधिकरण से बाहर 'मानवाधिकार' के नाम पर पुलिस/प्रशासन को इस कानून का हवाला देकर निष्पक्ष जांच पर रूकावट पैदा करते रहेंगे। किसी आतंकवादी या सांप्रदायिक घटना के बाद भी अल्पसंख्यक समुदाय के किसी सदस्य को संदेह से देखना या पूछताछ करना भी मानसिक पीड़ा कहा जा सकता है। यदि यह कानून होता तो गोधरा की घटना या बाटला हाउस इनकाउंटर के दौरान संदेहास्पद व्यक्ति को गिरफ्तार करना या उनसे पूछताछ संभव नहीं हो पाता। यदि पुलिस/प्रशासन पर आरोप लग गया तो राष्ट्रीय/राज्य प्राधिकरण द्वारा गठित विशेष न्यायालय में उन पर आपराधिक मुकदमा चलेगा। चूंकि प्राधिकरण वैधानिक संस्था है और वही नौकरशाह/पुलिस को अपराधी मानकर मुकदमा चलाएगा, इसीलिए पुलिस व नौकरशाह को निजी हैसियत से ही मुकदमा लड़ना होगा। अर्थात ऐसा मुकदमा राज्य बनाम पुलिस अधिकारी या लोकसेवक होगा। इस आरोपित जुल्म के लिए उसे सात वर्ष सश्रम सजा से लेकर आजीवन कारावास हो सकता है (अनु. 119)। परंतु यदि किसी बहुसंख्यक (हिन्दू) द्वारा पुलिस/प्रशासन पर यातना का आरोप लगता है तो सजा प्रचलित कानून के आधार पर दी जाएगी। पुलिस या लोक सेवक की कर्तव्य-अवहेलना की ऐसी परिभाषा बना दी गई है कि किसी भी पुलिस अधिकारी या लोकसेवक के हाथ-पांव फूल जाएंगे।

अनुच्छेद 13 के अनुसार यदि पुलिस या प्रशासन पूर्वाग्रह ग्रसित होकर या अधिकारों का उपयोग इस प्रकार करता है कि जिससे सांप्रदायिक या लक्षित हिंसा होती है तो यह उसकी कर्तव्य-अवहेलना मानी जाएगी।

पुलिस या लोकसेवक के अच्छे मनोभाव से उठाए गए कदम से भी दुर्भाग्य से सांप्रदायिक तनाव या हिंसा हो जाती है तो लोकसेवक/पुलिस इस कानून के जंजाल में फंस जाएगा। कुछ संभावित स्थितियों पर पुलिस/प्रशासन की दशा क्या होगी इसे देखा जाना चाहिए।

- पुलिस या प्रशासन के किसी कदम से सार्वजनिक शांति भंग होती है तब भी वह दोषी होगा। किसी जांच के दौरान पवित्र कुरान शरीफ यदि गलती से जमीन पर गिर गया और अशांति पैदा हो गई तब इस गलती के लिए पुलिस/प्रशासन अपराधी बन जाएगा। इस तरह की घटनाएं घट चुकी हैं। ऐसी कर्तव्य-अवहेलना के लिए उसे दो वर्ष से पांच वर्ष तक के सश्रम कारावास का प्रावधान है (अनु. 120)। ठीक उसी प्रकार अल्पसंख्यकों के अवैध धार्मिक स्थलों को तोड़ना पुलिस-प्रशासन के लिए महंगा पड़ेगा। अर्थात उन्हें अल्पसंख्यकों को अराजक बनने की छूट देनी होगी। बहुसंख्यकों के अवैध निर्माण को तोड़ने में कानून पुलिस/प्रशासन के साथ होगा परंतु अल्पसंख्यकों के अवैध निर्माण को तोड़ने में कानून उनकी गर्दन पर तलवार की तरह लटकता रहेगा। उन्हें अल्पसंख्यकों को 'माई-बाप' मानकर ही अपना काम करना होगा। तभी वे अपनी नौकरी और इज्जत बचा पाएंगे।
- अगर पुलिस/प्रशासन किसी सांप्रदायिक या लक्षित हिंसा से 'पीड़ित' (अर्थात समूह के सदस्य) को सुरक्षा देने या प्रदान करने से इंकार करता है तो वह 'जुल्मी' माना जाएगा अनुच्छेद 13 (आई) (ए)।
- 'समूह' के सदस्यों की मांग या अपेक्षा के अनुकूल वह यदि इस कानून के दायरे की घटना की जांच करने से इनकार करता है तो वह 2 से पांच वर्ष के सश्रम कारावास का हकदार होगा 13(आई) (सी) एवं 120।

पुलिस एवं नौकरशाही से जो अपेक्षा की गई है, उस पर भी गौर करने की जरूरत है:

- राज्य में या किसी भाग में 'सांप्रदायिक एवं लक्षित हिंसा' का स्वरूप चिन्हित करना होगा। इसमें उन आशंकाओं, संभावनाओं और आरोपों को मद्देनजर रखते हुए जिनसे सांप्रदायिक या लक्षित हिंसा हो सकती है या 'समूह' के विरूद्ध तनाव पैदा हो सकता है या वातावरण बन सकता है तो इसे कार्रवाई करनी होगी (अनु:18 आई)। अर्थात किसी हिन्दू संगठन का आयोजन या दिन-प्रतिदिन की गतिविधि को 'समूह' के विरुद्ध शत्रुतापूर्ण वातावरण बनाने का आरोप लगाकर

अल्पसंख्यक समुदाय को उकसाया गया तो इसके लिए प्रशासक/पुलिस कर्तव्य अवहेलना का दोषी मान लिया जाएगा। अतः हिन्दू संगठनों का जलसा, जुलूस या अन्य कोई गतिविधि नहीं हो, इसी में पुलिस/प्रशासनिक अधिकारी सुरक्षित महसूस करेगा। अगर यह कानून होता तो श्री लालकृष्ण आडवाणी की रथ यात्रा को रोक दिया जाता। किसी हिन्दू संगठन की रैली के बाद यदि असामाजिक तत्व ने तनाव पैदा कर दिया तो पुलिस या लोकसेवक बलि का बकरा बन जाएगा। अतः पुलिस/प्रशासन को अपने बचाव के लिए सुरक्षित रास्ता क्या होगा, इसका अनुमान लगाना अत्यंत ही सरल कार्य है। हिन्दू कार्यकर्ताओं को भयभीत करके रखना, जरूरत पड़ने पर गिरफ्तार करते रहना, वैचारिक काम करने में हतोत्साहित करना और जलसा व जुलूसों को प्रतिबंधित करके रखना।

- पुलिस प्रशासन से अपेक्षा की जाती है कि बिना विलंब एवं निष्पक्षता और भेदभाव रहित अपनी शक्ति का उपयोग करे (अनुच्छेद 18 (3)। जाहिर है यह कानून इन तीनों बातों की अपेक्षा सिर्फ समूह या अल्पसंख्यकों के संदर्भ में करता है। तीनों बातें ऐसी हैं, जिनके संबंध में आरोप लगाना आसान है। इसलिए उनकी 'तत्परता' का अर्थ क्या होगा? अल्पसंख्यकों के प्रति पूर्ण समर्पण।
- इस अधिनियम द्वारा 'पीड़ितों' एवं उनके 'गवाहों' एवं सूचना देने वालों अर्थात मुखबिरों को सुरक्षा न दे पाना पुलिस/प्रशासन का अपराध माना जाएगा। ये भी सिर्फ सभी 'समूह' के संदर्भ में ही हैं (अनुच्छेद 13(1)। लोकसेवक एवं पुलिस के वरिष्ठ अधिकारियों को भी शिकंजे में कसने का प्रयास किया गया है।

इस प्रकार विस्तृत रूप से अनेक प्रावधानों द्वारा नौकरशाही/पुलिस को अल्पसंख्यकवादी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध बनाया गया है। उन्हें अल्पसंख्यकवाद को जीवंत उपकरण बनाया गया है। राज्य को बहुसंख्यक विरोधी चरित्र, दृष्टि और दिशा देने का इससे बड़ा प्रयास और क्या हो सकता है?

औपनिवेशिक काल में भी साम्राज्यवादी सरकारों ने पुलिस और नौकरशाही का दुरुपयोग तो किया, परंतु वैधानिक एवं राजनीतिक स्तर पर उन्हें 'कानून के शासन' का ही प्रतिबिम्ब बनाकर रखा था। पुलिस या नौकरशाही को विचारधारा-ग्रस्त हिटलर एवं मुसोलिनी द्वारा ही किया गया था। यहूदियों को किसी भी घटना या संभावित घटना के लिए जिम्मेदार मानकर उन्हें पकड़ने, पीटने, यातना देने में वे ईमानदार, निष्पक्ष और कर्तव्य परायण माने जाते थे। क्या उसका रूपांतरण इस कानून द्वारा नहीं किया जा रहा है?

संघवाद पर आघात

विधेयक के अनुच्छेद 20 में केंद्र राज्य के शक्ति विभाजन, संबंध और सीमाओं को ध्वस्त करने का प्रयास किया गया है। इसके अनुसार संगठित सांप्रदायिक एवं लक्षित हिंसा का होना, भारत के संविधान के अनुच्छेद 355 के तहत "आंतरिक गड़बड़ी" मानी जाएगी तथा उस अनुच्छेद और परिस्थिति के अनुसार केंद्र सरकार से कदम उठाने की अपेक्षा की गई है। "आंतरिक गड़बड़ी" (Internal Disturbances) इन दो शब्दों को 44वें संशोधन के द्वारा संविधान से हटा दिया गया। इसे संघीय और लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए घातक माना गया है। इसके दुरुपयोग को रोकने के लिए आपातकाल के बाद 1978 में यह संशोधन किया गया था। राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने इसे पुनर्जीवित किया है। भारतीय संघवाद को मजबूत करने के लिए एक नहीं अनेक बार कदम उठाए गए हैं। इनमें एक सरकारिया कमीशन की रिपोर्ट भी है। इसमें राज्यों के मामलों में केंद्र के हस्तक्षेप की प्रवृत्ति पर लगाम लगाई गई है परंतु राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने इन सबको कूड़ेदान में डालने का काम किया है। इसने केंद्र को अनुच्छेद 355 का धड़ल्ले से दुरुपयोग कर राज्यों में राजनीतिक अस्थिरता पैदा करने का अधिकार प्रदान किया गया है। यद्यपि मूल विधेयक के इस प्रावधान को राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने बाद में संशोधित कर 'आंतरिक गड़बड़ी' शब्दों को हटा लिया है। परंतु लोकतांत्रिक-संघीय व्यवस्था के सामने यह प्रश्न उभर कर आया है। मूल विधेयक में इस प्रावधान को रखने का अर्थ क्या संविधान में अलोकतांत्रिक तरीके से फेरबदल करने की गहरी साजिश का हिस्सा नहीं थी? राष्ट्रीय सलाहकार परिषद को वैधानिक दर्जा प्राप्त है। इसकी अध्यक्ष श्रीमती सोनिया गांधी हैं, जिन्हें कैबिनेट मंत्री के समकक्ष दर्जा दिया गया है। वह कांग्रेस की अध्यक्ष एवं संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की चेयरमैन भी हैं। अतः इस प्रकार का कदम आपातकाल वाली मानसिकता को ही प्रदर्शित करता है।

संस्थागत भेदभाव का काल्पनिक आरोप

इस विधेयक के संबंध में हो रहे विमर्श में यह तर्क दिया जा रहा है कि नौकरशाही/पुलिस 'समूह' के साथ 'संस्थागत भेदभाव' करती है। यह कोई नया आरोप नहीं है। आजादी से पूर्व मुस्लिम लीग इसी प्रकार का मनगढ़ंत आरोप लगाती थी। मुस्लिम ध्रुवीकरण में इसको औजार के रूप में प्रयोग किया गया था। विधेयक के प्रावधानों से एक बात अप्रत्यक्ष रूप से जाहिर होती है कि पुलिस/नौकरशाही पर अविश्वास, आशंका जतायी जा रही है। विधेयक के समर्थक अल्पसंख्यकों के साथ 'संस्थागत भेदभाव' का आरोप लगा रहे हैं। भारतीय राज्य को कमजोर करने, उसकी प्रशासनिक एवं कानून और व्यवस्था एजेंसियों को अपराध बोध भरने का सुनियोजित प्रयास वर्षों से चल रहा है। बिना किसी ठोस प्रमाण के इस तरह के आरोप को

सार्वजनिक तौर पर लगाना, अपने आप में राज्य की नैतिकता एवं वैधानिकता को समाप्त करने का प्रयास होता है। विभाजन से पूर्व मुस्लिम लीग संस्थागत भेदभाव का आरोप राज्य एवं इसकी संस्थाओं पर लगाती रही थी, जिसने उसे मुस्लिमों को द्विराष्ट्रवाद के पक्ष में लामबंद करने एवं नेहरू एवं गांधी के नेतृत्व से दूर करने में मदद की थी। मुस्लिम लीग ने 1939 में 'कांग्रेस राज' में अल्पसंख्यकों पर हुए अत्याचार की रिपोर्ट तैयार करने के लिए पीरपुर कमेटी का गठन किया था। इसने प्रांतों में कांग्रेसी शासन को 'हिन्दू फासीवादी राज' घोषित कर मुसलमानों के साथ रोजगार, शिक्षा, सुरक्षा सभी मामलों में पुलिस व प्रशासन द्वारा भेदभाव बरतने का आरोप लगाया था। कांग्रेस ने तब उसका प्रतिकार किया था। तब भी इन आरोपों के समर्थन में लीग के पास एक भी तथ्य नहीं था।

आजादी के बाद मुस्लिम कुलीनों द्वारा इस मनगढ़ंत आरोप को दोहराया जा रहा है। रेडियेंस, मिल्ली गजट, उर्दू अखबारों एवं तीस्ता व जावेद आनंद संपादित 'कम्यूनलिज्म कम्बैट' सहित मुस्लिम बुद्धिजीवियों के एक वर्ग द्वारा सुनियोजित तरीके से भेदभाव का आधारहीन आरोप लगाया जा रहा है। पिछले पांच वर्षों में सच्चर कमेटी और रंगनाथ मिश्र आयोग की रिपोर्ट आई है। दोनों में से किसी ने भी 'संस्थागत भेदभाव' का एक भी उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया है।[7] ए.ए.ए. फैजी, मोइन शकीर एवं हुमायू कबीर जैसे विद्वानों ने इन आरोपों को काल्पनिक एवं मनगढ़ंत बताया था। आखिर झूठ को सच बनाने का यह रास्ता हिटलर के सलाहकार गोयेबल्स ने दिखाया था। राष्ट्रीय सलाहकार परिषद में ऐसे ही अभियानवादी बुद्धिजीवी भरे पड़े हैं। राज्य प्रोत्साहित सांप्रदायिकता को तथ्य या तर्क की क्या आवश्यकता है? मौखिक विमर्शों में विधेयक के समर्थकों द्वारा पुलिस/नौकरशाही दोनों पर पूर्वाग्रह-ग्रस्त होने और संस्थागत भेदभाव का आरोप लगाया जा रहा है। इस विधेयक ने आपराधिक कानून के सभी आयामों का संप्रदायीकरण कर दिया है। इसका सबसे घातक प्रभाव राज्य की उन एजेंसियों एवं नौकरशाही पर पड़ेगा, जिन पर प्रशासन, कानून व्यवस्था सेवाओं में भर्ती, आदि का दायित्व है।

'समूह' के बाहर के संगठनों के अस्तित्व पर सवाल

'समूह' के बाहर के किसी भी संगठन के पदाधिकारियों को गैर-राज्यकर्ता (Non State Actors) कहा गया है। उन्हें अपने संगठन के सदस्यों के किसी भी उस कार्य के लिए जिम्मेदार मान लिया गया है जो 'समूह' को हानि पहुंचाने वाला होगा (अनु. 15 सी)। इस संदर्भ में तीन बातों का उल्लेख किया गया है:

7. सच्चर कमेटी से जुड़े हजारों पृष्ठों के दस्तावेज के अध्ययन में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है। पश्चिम बंगाल के एक केस को कमेटी ने वहां के लोक सेवक आयोग के सामने रखा, वह भी गलत सिद्ध हुआ।

(1) किसी संगठन का पदाधिकारी अपने सदस्यों के अपराधों के बारे में जानकारी रखता है या जान बूझकर उस जानकारी की अनदेखी करता है (अनु. 15:1)। हर पदाधिकारी को यह प्रमाणित करना होगा कि उसने अनदेखी की या नहीं?यदि अपराधी अपने संरक्षण के लिए संगठन के तमाम पदाधिकारियों को घसीटना चाहेगा तो उसका एक बयान ही पूरे संगठन को कथित अपराध के लिए दोषी मान लिया जाएगा।

(2) संगठन के पदाधिकारियों को यह भी साबित करना होगा कि किसी सदस्य ने 'समूह' के प्रति अपराध उनके निर्देशन में नहीं है।

(3) अगर संगठन के पदाधिकारी उन कार्यों को रोकने के लिए प्रभावी कदम नहीं उठा पाए या अन्वेषण से जुड़े अधिकारियों को जानकारी नहीं दे पाए तो वे दोषी माने जाएंगे।

खास बात यह है कि इस कानून के अंतर्गत पंजीकृत और अपंजीकृत दोनों प्रकार के हिन्दू (गैर समूह) संगठनों को लाया गया है। अतः दूर देहात के फुटबॉल क्लब से लेकर शहर के यूथ क्लब जो हिन्दुओं के हों, वे सभी इस दायरे में आ जाते हैं। संगठन का पदाधिकारी बनना एक बड़ा जोखिम लेने के समान होगा। अल्पसंख्यक संगठनों के पदाधिकारी अपने सदस्यों के अपराधों के लिए इस कानून में कतई जिम्मेदार नहीं होंगे। उनकी संलिप्तता के संबंध में प्रश्न नहीं खड़ा होगा। गैर राज्यकर्ता (Non State Actors) को उपरोक्त अपराध के लिए 10 वर्ष की सजा एवं जुर्माना का प्रावधान है (अनु. 18:122)। कानून बनते ही हजारों छोटे-बड़े संगठन या तो विघटित कर दिए जाएंगे या ऐसी संस्थाएं पदाधिकारी-विहीन हो जाएंगी।

राष्ट्रीय प्राधिकरण

इस विधेयक ने 'समूह' को सुरक्षा देने, उनके प्रति नौकरशाही और पुलिस की वफादारी को आंकने, फिर 'समूह' से संबंधित न्यायालय के मुकदमों (दिन प्रतिदिन की सुनवाई) में हस्तक्षेप करने के लिए राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरों पर संस्थाओं 'राष्ट्रीय प्राधिकरण' एवं राज्य 'प्राधिकरणों' का निर्माण किया है। इनकी ताकत के सामने भारत का संघीय ढांचा भी चरमरा जाएगा। 'कानून और व्यवस्था' भारतीय संविधान के तहत राज्य का विषय है परंतु प्राधिकरण को उसका अतिक्रमण करने का अधिकार दे दिया गया है।

राष्ट्रीय स्तर पर सांप्रदायिक सामंजस्य, न्याय और क्षतिपूर्ति के लिए राष्ट्रीय प्राधिकरण के गठन का प्रावधान अध्याय चार (अनुच्छेद 21) में है। सात सदस्यों वाली इस संस्था में 1 सदस्य तो अनुसूचित जाति या जनजाति का होगा, शेष में कम-से-कम चार सदस्य 'समूह' के बीच से होंगे। अर्थात अल्पसंख्यक समुदाय

के चार सदस्य होंगे। प्राधिकरण का चेयरमैन और वाइसचेयरमैन अनिवार्यतः "समूह" का ही व्यक्ति होगा। निर्णय साधारण बहुमत से किया जाएगा। कोई भी व्यक्ति जिसने लेखन या दूसरे तरह से 'समूह' के प्रति पूर्वाग्रह प्रदर्शित किया हो वह इस प्राधिकरण का चेयरमैन, वाइसचेयरमैन या सदस्य नहीं हो सकता है। अर्थात अगर किसी ने मदरसा शिक्षा, मुस्लिम आरक्षण, मुस्लिम-परंपरा आदि पर रचनात्मक सवाल भी खड़ा किया है तो वह व्यक्ति इस प्राधिकरण के लिए अयोग्य होगा। तजामुल हुसैन और डॉ. एच. सी. मुखर्जी (दोनों भारत के संविधान सभा के सदस्य थे) ने 'अल्पसंख्यक' अवधारणा को गलत और हानिकारक बताया था। मुखर्जी स्वयं ईसाई मतावलंबी थे। बहरहाल उनकी बौद्धिक परंपरा के लोग प्राधिकरण का सदस्य बनने के लिए इस विधेयक के मुताबिक अयोग्य हैं। प्राधिकरण को अर्द्ध न्यायिक संस्था का भी दर्जा दिया गया है। सिविल कोर्ट की तरह यह काम कर सकता है। केंद्र सरकार इस प्राधिकरण को पुलिस एवं जांच के लिए कर्मचारी उपलब्ध कराएगा। डीजीपी स्तर के अधिकारी के अंतर्गत वे काम करेंगे (अनु. 29:i)।

प्राधिकरण का अधिकार क्षेत्र व्यापक ही नहीं अपरिभाषित भी है:

(1) इस कानून के अंतर्गत किए जाने वाले अन्वेषणों, मुकदमों का पर्यवेक्षण करना (2) न्यायालय में चल रहे मुकदमों (जो इस कानून के दायरे में होगा) पर न सिर्फ नियंत्रण (पर्यवेक्षक) रखना, बल्कि किसी मुकदमे में हस्तक्षेप का अधिकार दिया गया है। (3) इसे लोकसेवकों एवं पुलिस पर नियंत्रण रखने का अधिकार दे दिया गया है। प्राधिकरण इस बात का पर्यवेक्षण, पुनरावलोकन एवं मॉनीटर करेगा कि लोकसेवक सांप्रदायिक एवं लक्षित हिंसा रोकने के लिए प्रभावी कदम उठाते हैं या नहीं। (4) लोकसेवकों एवं पुलिस की तैनाती, स्थानान्तरण, प्रतिस्थापन पर भी प्राधिकरण को पर्यवेक्षण एवं पुनरावलोकन का अधिकार दिया गया है। (5) प्राधिकरण लोकसेवकों द्वारा किए गए अपराधों का रिकॉर्ड रखेगा। (6) संघ एवं राज्य के सभी विभागों, गैर राज्यकर्ताओं से सूचना प्राप्त करने का भी उसे अधिकार होगा।

(7) इसे राज्य के अधिकारियों को किसी जांच के संबंध में निर्देश जारी करने का अधिकार होगा। (8) जिलाधिकारी और पुलिस आयुक्त सांप्रदायिक एवं लक्षित हिंसा की घटना, आशंका, संभावना आदि प्रश्नों पर लिखित रूप से राष्ट्रीय प्राधिकरण को जानकारी देंगे। (9) यह किसी व्यक्ति को किसी स्थान से 6 महीने तक निर्वासित करने का अधिकार रखता है। (10) इसे सूचना के अधिकार के अंतर्गत "पीड़ित" एवं "गवाहों" के संबंध में जानकारी देने की बाध्यता से मुक्त रखा गया है। इस प्रकार राजधानी से लेकर जिले और तालुका तक की सभी सरकारी, गैरसरकारी संस्थाएं इसके अधीनस्थ बना दी गई हैं। यह किसी भी

संगठन के किसी पदाधिकारी से जानकारी लेने के लिए उसे बुला सकता है। जिलाधिकारी इसे रिपोर्ट भेजेंगे। कानून और व्यवस्था राज्य का विषय है। लेकिन राज्यों में प्राधिकरण का सीधा हस्तक्षेप होगा। इस प्रकार किसी भी राज्य सरकार, राजनीतिक प्रक्रिया और व्यवस्था में अस्थिरता पैदा करने का यह प्राधिकरण एक उपकरण होगा, जिसका इस्तेमाल केंद्र सरकार अपनी इच्छा से जब चाहे कर सकती है। उदाहरणार्थ यदि यह कानून होता तो बिहार में फारबिसगंज (जुलाई 2011) की घटना के संदर्भ में बिहार सरकार की अवहेलना करने के लिए पर्याप्त था। क्या भारत का संघीय ढांचा राष्ट्रीय प्राधिकरण के अधीन गिरवी रखा जा सकता है?

एक अल्पसंख्यक-परस्त कानूनी संरचना बनाने का यह प्रस्ताव पंथनिरपेक्षता के लिए खतरनाक काले छिद्र (Black Hole) की तरह है। इस प्रारूप ने उस सोच और बौद्धिक उपक्रम को उजागर किया है जो देश में बहुराष्ट्रीयता को स्थापित करना चाहती है। यह विधेयक Exclusion के दर्शन पर आधारित है।

राकेश सिन्हा

मोतीलाल नेहरू कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय
के राजनीति विज्ञान विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर तथा
भारत नीति प्रतिष्ठान के मानद निदेशक हैं।

प्रतिष्ठान के अन्य प्रकाशन

1. Terrorism and Indian Media	80.00
2. आतंकवाद और भारतीय मीडिया	80.00
3. Deceptive Equality (Deconstructing the Equal Opportunity Commission)	50.00
4. भ्रामक समानता (समान अवसर आयोग की समीक्षा)	50.00
5. Census 2011: Blinkered Vision Fragmented Ideas	50.00
6. जनगणना 2011: बाधित दृष्टि विखंडित विचार	50.00
7. न्यू मीडिया चुनौतियाँ और संभावनाएँ	50.00
8. The Issue of Enemy Property and India's National Interest	50.00
9. राष्ट्रीयता का यक्ष प्रश्न? शत्रु संपत्ति पर सांप्रदायिक राजनीति	35.00
10. अजीज बर्नी की पुस्तक "आरएसएस की साजिश-26/11" (सच या झूठ का पुलिंदा?)	50.00
11. षड्यंत्र सिद्धांत के खलनायक बेनकाब	50.00
12. चीनी विस्तारवाद (भारतीय सीमा का अतिक्रमण)	50.00
13. लोकतंत्र पर प्रहार (नागरिक अधिकारों का हनन)	50.00